श्रीश्रीगुरु-गौराङ्गौ-जयतः

आत्माके रहस्य

(शरीर और मनसे परे आत्म-तत्त्वका निर्देश करनेवाली पुस्तिका)

श्रीश्रीमद्भक्तिवेदान्त नारायण गोस्वामी महाराज
द्वारा प्रदत्त हरिकथा

गौड़ीय वेदान्त प्रकाशन

आत्माके रहस्य © गौड़ीय वेदान्त प्रकाशन २०१५
प्रथम संस्करण २००७ — १०,००० प्रतियाँ
द्वितीय संस्करण २००८ — ३०,००० प्रतियाँ
तृतीय संस्करण २०१० — ३०,००० प्रतियाँ
चतुर्थ (संशोधित) संस्करण २०१५ — २०,००० प्रतियाँ

प्रकाशन-मण्डली (चतुर्थ संस्करण)
सम्पादन एवं प्रूफ-संशोधन—माधवप्रिय दास, अमलकृष्ण दास
अनुवादक—सुबलसखा दास, सुन्दरानन्द दास
टाइप—सुन्दरगोपाल दास
ले-आउट—शान्ति दासी
मुखपृष्ठ चित्र—जयगोपाल दास
मुखपृष्ठ डिजाइन—कृष्णकारुण्य दास
चित्र—श्यामरानी दासी
रेखाचित्र—बकु
आभार—मञ्जरी दासी, वैजयन्ती-माला दासी, सनातन दास

श्रील भक्तिवेदान्त नारायण गोस्वामी महाराज द्वारा सम्पादित विभिन्न ग्रन्थों एवं उनकी हरिकथाओंके निःशुल्क डाउनलोड एवं शुद्धभक्ति-योगसे सम्बन्धित जानकारीके लिए जायें—www.purebhakti.com
ई-मेल द्वारा उनकी हरिकथाओंको प्राप्त करनेके लिए जायें—www.harikatha.com
उनकी हरिकथाओं और उपदेशोंको सुनने एवं देखनेके लिए जायें—www.purebhakti.tv
मासिक सचित्र पारमार्थिक पत्रिकाको प्राप्त करनेके सम्पर्क करें—mathuramath@gmail.com

© गौड़ीय वेदान्त प्रकाशन २०१५
पृष्ठ संख्या ४, १६ एवं १८ पर चित्र श्रीश्रीमद्भक्तिवेदान्त नारायण गोस्वामी महाराजके आदेश-निर्देशमें चित्रित। © श्यामरानी दासी। अनुमति द्वारा मुद्रित। श्रील भक्तिवेदान्त स्वामी प्रभुपादका चित्र © सौजन्य—The Bhaktivedanta Book Trust International, Inc. (www.krishna.com). अनुमति द्वारा मुद्रित।

स्पेक्ट्र

समर्पण

हम इस ग्रन्थको भगवान श्रीकृष्णसे चली आ रही आत्मतत्त्वविद्, विशुद्ध ब्रह्म–माध्व–गौड़ीय–सम्प्रदायकी गुरु–परम्परा द्वारा प्रवर्तित भगवत्–प्रेमकी सर्वोत्तम विचारधाराको वर्त्तमान समयमें अत्यधिक प्रभावशाली पद्धतिसे संरक्षित एवं प्रवाहित करनेवाले श्रीचैतन्य महाप्रभुके नित्य परिकर अपने उन परमाराध्यतम श्रील गरुदेव नित्यलीलाप्रविष्ट ॐ विष्णुपाद अष्टोत्तरशतश्री श्रीमद्भक्तिवेदान्त नारायण गोस्वामी महाराजके श्रीकरकमलोंमें समर्पित करते हैं, जिन्होंने परमार्थके प्रति श्रद्धावान सम्पूर्ण विश्वके जीवोंको आत्माके स्वरूप तथा रहस्योंसे अवगत कराकर, उन्हें भगवान् श्रीकृष्णकी सेवाके अतिरिक्त अन्य अभिलाषाओंसे रहित होकर आत्माकी स्वाभाविक एवं नित्यवृत्ति—भक्तियोग अर्थात् भगवान्से प्रेम करनेकी विधिकी शिक्षा, प्रेरणा एवं उसके लिए यथार्थ लोभको उत्पन्न करनेका अतुलनीय बल प्रदान किया है—

प्रकाशन–मण्डली

विषय-सूची

प्रस्तावना i

चर्म-दर्शन एवं आत्म-दर्शन १

आत्मा स्थूल एवं सूक्ष्म शरीरसे परे ४

लौकिक सत्य एवं पारमार्थिक सत्य ६

आत्मस्वरूपका ज्ञान ही 'प्रकाश' एवं आत्मस्वरूपका अज्ञान ही 'अन्धकार' १५

सांसारिक वस्तुओंसे चिरस्थायी आत्मसुखकी प्राप्ति असम्भव १८

आत्मसुखकी प्राप्तिका एकमात्र उपाय—भक्तियोग १८

भगवान्‌से प्रेम करनेसे ही सभी प्राणियोंके प्रति प्रेम सम्भव २०

परमेश्वरका परिचय एवं स्वरूप २०

हरिकीर्त्तन—कलियुगमें आत्म-साक्षात्कारकी एकमात्र विधि २४

आत्मतत्त्वविद् गुरु २६

आत्मतत्त्वविद् महापुरुषके द्वारा ही 'शब्द-ब्रह्म' का उच्चारण सम्भवपर २७

आत्मतत्त्वविद् सद्‌गुरुके सङ्गकी महिमा २८

श्रीश्रीमद्भक्तिवेदान्त नारायण गोस्वामी महाराजजीका संक्षिप्त परिचय ३३

प्रस्तावना

इस ग्रन्थका उद्देश्य पाठकोंको उनके आत्म-स्वरूपके सौन्दर्य और चमत्कारसे परिचित कराना है। ऋषियों एवं मनीषियोंका कहना है कि हम सबकी आत्मा हजारों सूर्योंसे भी अधिक तेजवान और शक्तिशाली है। हमें इस विषयका अनुभव आत्मज्ञानसे सम्पन्न दिव्य महापुरुषोंके श्रीमुखविगलित वाणीको श्रद्धापूर्वक श्रवण करके प्राप्त हो सकता है। इस 'आत्माके रहस्य' नामक पुस्तिकाकी विषय-वस्तुको एक ऐसे ही आत्मतत्त्वके अनुभवसे परिपूर्ण तथा दूसरोंको भी आत्मतत्त्वका अनुभव करानेमें अद्भुत सामार्थ्यसे युक्त दिव्य महापुरुष—श्रीश्रीमद्भक्तिवेदान्त नारायण गोस्वामी महाराज द्वारा कृपापूर्वक एक व्याख्यानके रूपमें प्रस्तुत किया गया था। श्रील भक्तिवेदान्त नारायण गोस्वामी महाराज एक श्रेष्ठ वैष्णव-सन्त तथा वर्त्तमान समयमें सम्पूर्ण विश्वमें दिव्यज्ञानके प्रमुख उपदेष्टा रहे हैं। यह प्रवचन उन्होंने मार्च, २००२ ई॰ में क्वालालम्पुर, मलेशियामें दिया था।

एक और दिव्य महापुरुष श्रीश्रीमद्भक्तिवेदान्त स्वामी महाराज, जो सम्पूर्ण विश्वमें 'श्रील प्रभुपाद' के नामसे विख्यात हैं, उनका इस ग्रन्थमें प्रस्तुत कथाके वक्ताके साथ एक शिक्षा-गुरु तथा प्रिय मित्रके रूपमें अन्तरङ्ग सम्बन्ध है। श्रीश्रीमद्भक्तिवेदान्त नारायण गोस्वामी महाराज नियमित रूपसे

समस्त विश्वमें भ्रमण करके आत्माके रहस्योंका उपदेश प्रदान करनेके लिए श्रीश्रीमद्भक्तिवेदान्त स्वामी महाराजको ही अपनी प्रेरणाका स्रोत मानते हैं।

हम इस ग्रन्थकी प्रस्तावनाकी गरिमा वर्धित करने हेतु इसमें उन्हीं श्रीश्रीमद्भक्तिवेदान्त स्वामी महाराजके द्वारा पिञ्जरेमें बद्ध पक्षीका दृष्टान्त प्रस्तुत कर रहे हैं, जिसमें पक्षीकी तुलना आत्मासे की गयी है तथा पिञ्जरेकी उसे (आत्मारूपी पक्षीको) बद्ध करनेवाले शरीरसे। श्रीश्रीमद्भक्तिवेदान्त स्वामी महाराज लिखते हैं, "हम अपने (आत्माके) वास्तविक सुखकी उपेक्षाकर भौतिक पिञ्जरे (स्थूल-शरीर एवं सूक्ष्म-शरीर) को ही अपना स्वरूप मान रहे हैं। हमने अपनी समस्त शक्ति केवल भौतिक पिञ्जरेकी निरर्थक देख-रेखपर ही केन्द्रित कर रखी है तथा शरीररूपी पिञ्जरेमें बन्द आत्माकी पूर्ण रूपसे उपेक्षा कर रहे हैं। अतः हमें इसपर गहन विचार करना चाहिये कि पक्षी (आत्मा) का कार्य केवल पिञ्जरेकी देख-रेख करना ही नहीं है। वर्त्तमानमें हमारी समस्त क्रियाएँ पिञ्जरे (शरीर) की देख-भालकी ओर केन्द्रित हैं। अधिक-से-अधिक हम कला तथा साहित्यके द्वारा अपने सूक्ष्म-शरीरके एक अङ्ग—मनको कु (भोजन) देनेका प्रयत्न करते हैं। परन्तु हमें यह ज्ञात नहीं है कि हमारा मन भी भौतिक ही है, किन्तु कु अधिक सूक्ष्म रूपमें।

"तत्त्वतः आत्मा स्थूल-शरीर तथा सूक्ष्म-शरीरसे परे है। बद्धावस्थामें आत्मा स्थूल-शरीर और सूक्ष्म-शरीरके भीतर

एक सशक्त और क्रियाशील तत्त्व है। सुप्त आत्माकी आवश्यकताको जाने बिना कोई भी केवल स्थूल-शरीरको और सूक्ष्म-शरीरके एक अङ्ग—मनको सन्तुष्ट करके प्रसन्न नहीं हो सकता। स्थूल-शरीर तथा सूक्ष्म-शरीर चिन्मय आत्माके अनावश्यक बाह्य आवरणमात्र हैं। आत्माकी आवश्यकताओंकी पूर्त्ति करना अनिवार्य है। मात्र पिञ्जरे (शरीर) की आवश्यकताओंकी पूर्त्ति करनेसे पक्षी (आत्मा) को सन्तुष्ट नहीं किया जा सकता। हमारे लिए पक्षी (आत्मा) की आवश्यकताओंका वास्तविक ज्ञान होना अनिवार्य है।

"आत्माकी आवश्यकता भौतिक बन्धनकी सीमाओंके बाहर आकर अपनी सम्पूर्ण स्वतन्त्रता तथा आत्मतत्त्वके दर्शनकी लालसाको पूर्ण करना है। आत्मा महत्-ब्रह्माण्ड अर्थात् स्थूल एवं सूक्ष्म शरीरके आवरणोंसे बाहर आना चाहती है। आत्माको यह सम्पूर्ण स्वतन्त्रता केवल तभी प्राप्त हो सकती है जब उसे बृहत्-आत्मा (परमात्मा) श्रीभगवान्का साक्षात्कार प्राप्त हो।"

श्रील भक्तिवेदान्त स्वामी महाराज सरल किन्तु सूक्ष्म विचारपूर्वक शरीर तथा आत्माके अन्तरकी विस्तृत व्याख्या करते हुए आगे कहते हैं, "यदि हम अपना ध्यान इस शरीरपर केन्द्रित करें तथा यह अनुसन्धान करें कि यह शरीर हमारी वास्तविक पहचान है अथवा नहीं, हम इस निष्कर्षपर पहुँचेंगे कि हम शरीरके ज्ञाता हैं—किन्तु शरीर नहीं। यह शरीर हमारी क्रियाओंका एक क्षेत्रमात्र है। इस

शरीरसे हमारा उतना ही सम्बन्ध है जितना कि एक किसानका उसके खेतसे।

"ऐसी सुबुद्धि एक बालकमें भी होती है। यदि हम बालकको उसकी अँगुली दिखा कर पूछें, 'यह क्या है?' तो बालकका उत्तर होगा 'यह मेरी अँगुली है।' बालक 'मैं अँगुली हूँ' कदापि नहीं कहेगा। इस शरीरका प्रत्येक अङ्ग 'मेरा' है—मेरा शरीर, मेरा मस्तक, मेरा पैर। परन्तु 'मैं' कौन हूँ और कहाँ हूँ? यही यथार्थ जिज्ञासा होनी चाहिये।"

इस ग्रन्थमें प्रस्तुत श्रीश्रीमद्भक्तिवेदान्त नारायण गोस्वामी महाराजजीके द्वारा वर्णित कथाएँ सत्य हैं तथा वह उपनिषदों और पुराणोंसे ली गयी हैं। हम आशा करते हैं कि आत्मतत्त्वको प्रकाशित करनेवाली इन कथाओंके अनुशीलनसे आत्माके रहस्योंके अनुसन्धानमें रत जिज्ञासु व्यक्ति इन रहस्योंसे अवगत होकर आत्माकी पारमार्थिक यात्रा—श्रीभगवान्‌के साक्षात्कारकी ओर अग्रसर हो पायेंगे तथा जनसाधरण भी इन कथाओंसे लाभान्वित होंगे। इति।

श्रीहरि–गुरु–वैष्णव–कृपालेश–प्रार्थी
प्रकाशन–मण्डली

श्रीश्रीमद्भक्तिवेदान्त नारायण गोस्वामी महाराज

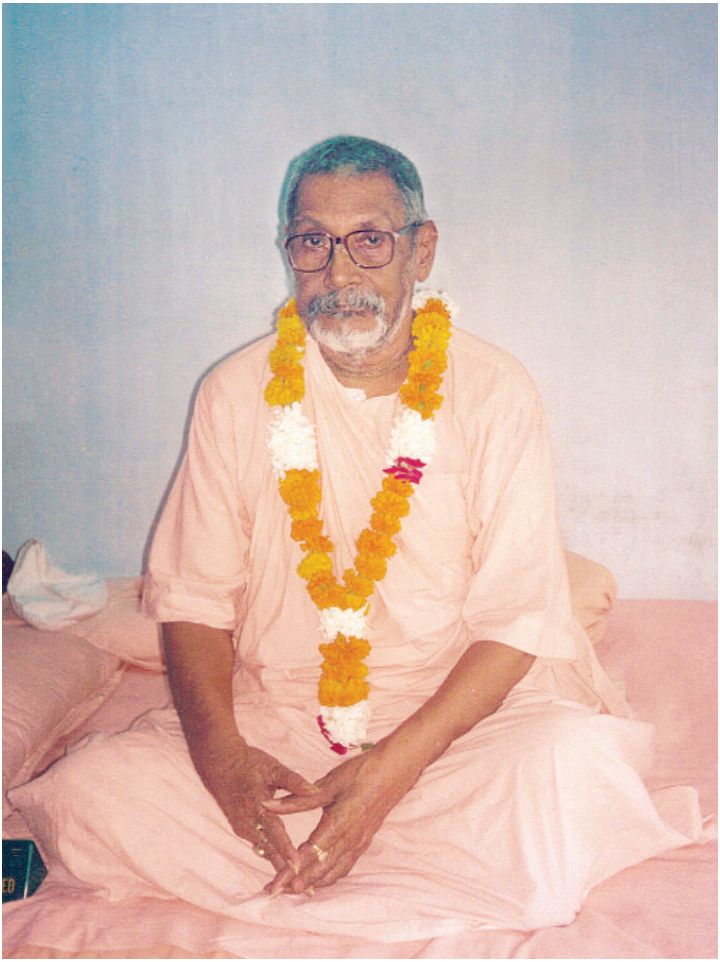

श्रीश्रीमद्भक्तिवेदान्त वामन गोस्वामी महाराज

श्रीश्रीमद्भक्तिवेदान्त स्वामी महाराज

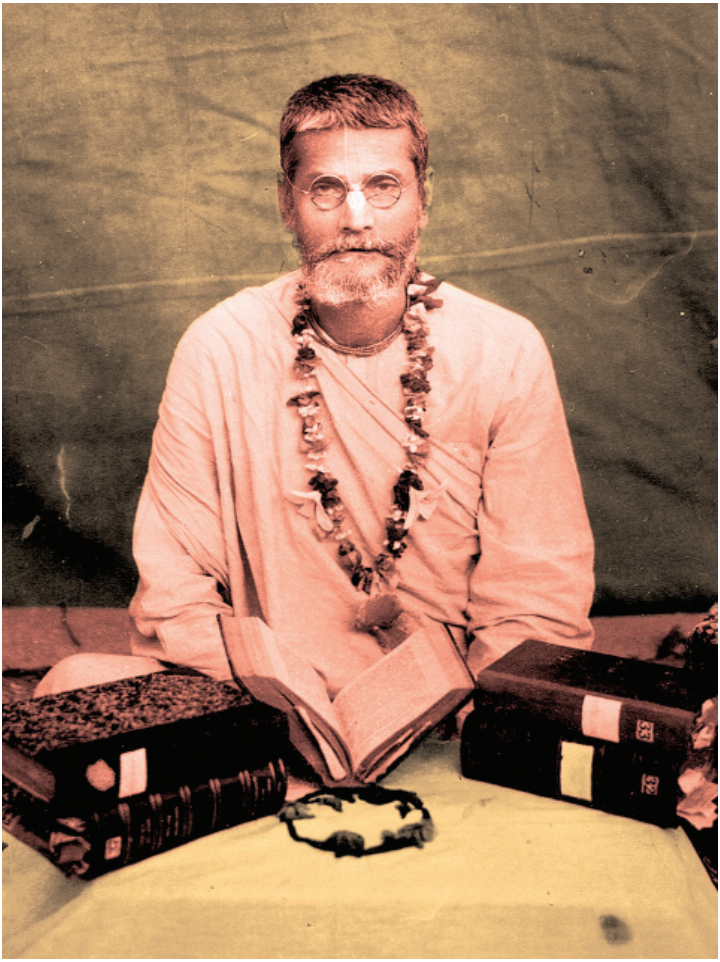

श्रीश्रीमद्भक्तिप्रज्ञान केशव गोस्वामी महाराज

आत्माके रहस्य

चर्म-दर्शन एवं आत्म-दर्शन

बहुत समय पहले अष्टावक्र नामक एक शक्तिशाली ऋषि हुआ करते थे। वे आठ अङ्गोंसे टेढ़े थे। अतएव जब वे चलते थे, तो उनकी चेष्टाएँ अत्यन्त विचित्र तथा बेढंगी प्रतीत होती थीं। साथ ही वे बड़े कु भी थे, जिस कारण साधारण लोग अधिकतर उन्हें देखनेमात्रसे ही हँसने लगते थे। बाह्य दृष्टिसे वक्र (टेढ़े) तथा विचित्र अङ्ग होनेपर भी उनका हृदय अत्यन्त पवित्र था, क्योंकि उन्होंने अपने नित्य आत्म-स्वरूपका साक्षात्कार कर लिया था। वे शरीर और आत्माके अन्तरको जानते थे तथा उन्हें इसकी अनुभूति भी थी।

एक बार अष्टावक्र ऋषि महाराज जनककी सभामें उपस्थित हुए। जैसे ही उन्होंने सभामें प्रवेश किया, वहाँ उपस्थित सभी व्यक्ति उन्हें देखकर हँसने लगे। यह देखकर अष्टावक्र ऋषि भी हँसने लगे। सभी सभासद विस्मित होकर एक दूसरेसे कहने लगे, "हम सभी उसपर हँस रहे हैं, परन्तु वह हमसे भी जोरसे ठहाका लगाकर हँस रहा है। इसका क्या कारण है?"

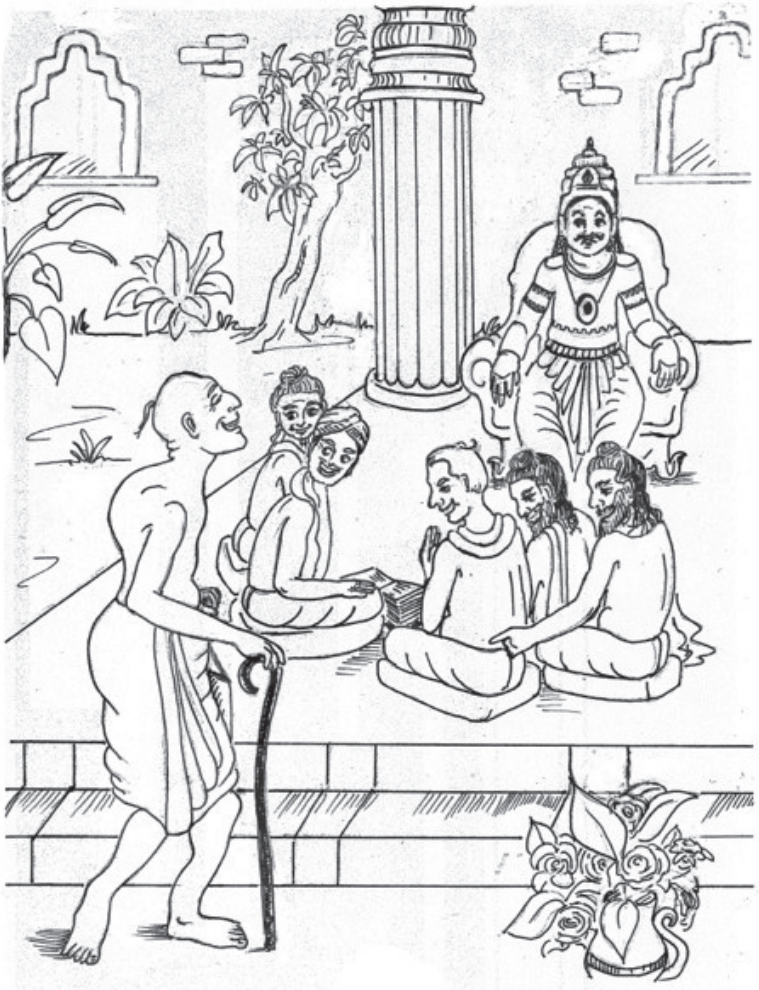

महाराज जनककी सभामें अष्टावक्र ऋषि

महाराज जनकने घोषणा कराके ऋषि-मुनियों एवं विद्वानोंको अपनी सभामें निमन्त्रित किया था, जिसके फलस्वरूप अष्टावक्र ऋषि भी वहाँपर उपस्थित हुए थे। उस समय महाराज जनकने अपने सिंहासनसे उठकर अत्यधिक दीनतापूर्वक अष्टावक्र ऋषिसे पूछा, "हे ऋषिवर! आप इतनी जोरसे हँस क्यों रहे हैं?" इसपर ऋषिने उत्तर दिया, "मैंने सोचा था कि मैं ऋषि-मुनियों एवं विद्वानोंकी सभामें आया हूँ, किन्तु मुझे प्रतीत हो रहा है कि मैं तो मोचियोंके समाजमें आ पहुँचा हूँ। इसका कारण है कि एक मोचीकी रुचि केवल चमड़ेमें ही होती है तथा वह यही देखता है कि यह चमड़ा अच्छा है, यह चमड़ा अच्छा नहीं है। आप सभी मेरी चमड़ीको ही देख रहे हैं। आपकी रुचि यह देखनेमें है कि कोई रूपवान है अथवा कु

आप सभीके मन इन नश्वर वस्तुओंमें ही रत हैं। जिस प्रकार साधुजन (विद्वान) मेरी आत्माका ही दर्शन करते हैं, आप लोग वैसा दर्शन नहीं कर पा रहे हैं। अन्तरमें स्थित शाश्वत आत्माकी उपेक्षा करके बाह्य नश्वर शरीरको महत्त्व देना तो केवल अज्ञान ही है।"

अष्टावक्र ऋषिके ये शब्द महाराज जनकके हृदयको भेद गये। वे समझ गये कि अष्टावक्र ऋषि कोई साधारण व्यक्ति नहीं हैं, अपितु आत्माके तत्त्वसे पूर्णतः अवगत एक महापुरुष हैं, अतएव अत्यधिक सम्मानके पात्र हैं। तब महाराज जनकने बड़े आदरसे अष्टावक्र ऋषिको सिंहासनपर

बैठाकर उन्हें प्रणाम किया तथा उन्हें अपने शिक्षा-गुरुके रूपमें वरण किया।

आत्मा स्थूल एवं सूक्ष्म शरीरसे परे

स्थूल अथवा सूक्ष्म शरीर हमारा वास्तविक स्वरूप नहीं है। भौतिक स्थूल-शरीर क्या है? यह माँस, हड्डी, रक्त, मल-मूत्र आदि बहुत-से अपवित्र पदार्थोंका एक थैलामात्र है। मन भी भौतिक सूक्ष्म-शरीरका ही एक सूक्ष्म अङ्ग है तथा आत्मासे भिन्न है। यह मन अस्थायी सांसारिक भावनाओंको वास्तविक मानता है तथा परिणामस्वरूप अल्पमात्र सुख तथा अत्यधिक वेदनाका ही कारण बनता है। हम सभी स्थूल-शरीर अथवा सूक्ष्म-शरीरके अङ्ग—मन न होकर इन दोनोंसे पृथक् आत्मा हैं।

भौतिक शरीर नश्वर हैं। विश्वके समस्त चिकित्सक तथा वैज्ञानिक मिलकर भी शरीरकी वृद्धावस्थाको रोक नहीं सकते। आजसे बीस, तीस अथवा पचास वर्षोंके पश्चात् हमारा युवा शरीर वृद्ध हो जायेगा। हमारे शरीरकी सुन्दरता तथा शक्ति लुप्त हो जायेगी, हम लाठीके बिना चल भी नहीं सकेंगे तथा इसके कु
मृत्यु हो जायेगी। उस समय हमें वह सब कु
होगा जो हमनें अपने इस जीवनकालमें सञ्चित किया है।

एकमात्र श्रीभगवान् और श्रीगुरुके बिना इस संसारके असीम दुःखोंसे कोई भी हमारा उद्धार नहीं कर सकता—कोई भी हमारी सब प्रकारसे रक्षा नहीं कर सकता। यदि हम

इस बातको स्वीकार करें—इसका अनुभव करें तथा स्वयंको श्रीगुरु एवं श्रीभगवान्‌की प्रेममयी सेवामें नियुक्त करें, तभी हम सुखी हो पायेंगे। चिन्मय आत्मा होनेके कारण हम सभी एक ही परमेश्वर श्रीभगवान्‌के विभिन्न-अंश हैं। पेड़-पौधों और पशुओंसे लेकर मनुष्यों तथा देवताओं जैसी श्रेष्ठ योनियोंमें स्थित आत्माएँ भी परमेश्वरकी विभिन्नांश हैं। स्वयं-भगवान्‌की वाणी अलौकिक-वेद भारतके प्राचीन शास्त्र हैं। इन वेदोंमें कहा गया है, "ईश्वर एक हैं, यह विश्व एवं विश्वमें स्थित सब कु

ईश्वरमें आस्था नहीं रखनेवाले नास्तिक केवल प्राकृतिक जगत्‌में ही विश्वास रखते हैं। उनका मानना है कि सब कु

हो जाता है। किन्तु यह प्रकृति जिसमें वे विश्वास रखते हैं, उन परमेश्वरकी भौतिक शक्तिमात्र है।

हम सभी जीव परमेश्वरके विभिन्नांश हैं, क्योंकि हम उनकी तटस्था-शक्तिसे उत्पन्न हुए हैं। परन्तु दुर्भाग्यवश हम उनसे विमुख होकर यह भूल गये हैं कि हम कौन हैं। हम इस भौतिक शरीररूपी आवरणको ही अपना वास्तविक स्वरूप मानते हैं। हम अपने समयको यह सोचकर धनका सञ्चय तथा उच्च पदोंको प्राप्त करनेमें व्यतीत करते हैं कि इनसे हमें सुख प्राप्त होगा, परन्तु इनका फल विपरीत ही मिलता है। अतः स्वयंको भौतिक शरीर मानना पूर्णतः भ्रम धारणा है।

लौकिक सत्य एवं पारमार्थिक सत्य

प्राचीन कालमें भारतवर्षमें हरिश्चन्द्र नामके एक महान तथा शक्तिशाली सम्राट हुए। उनकी पत्नीका नाम शैब्या तथा सुन्दर तरुण पुत्रका नाम रोहिताश्व था। हरिश्चन्द्र अत्यन्त सत्यवादी थे। वे कभी भी झूठ नहीं बोलते थे और न ही किसी झूठको सहन करते थे। वे विश्वमें सभी जीवोंके प्रति अपनी उदारता तथा दानशीलताके लिए प्रसिद्ध थे। विशेषतः वे ऋषि-मुनि, साधु-सन्त इत्यादि की अत्यधिक प्रसन्नतापूर्वक बहुत सेवा करते थे। यद्यपि उनमें ये सभी गुण विद्यमान थे, तथापि परदुःख-दुःखी, कृपालु विश्वामित्र मुनि उनके पारमार्थिक कल्याणके लिए चिन्तित होकर विचार करने लगे कि यदि राजा हरिश्चन्द्रका किसी प्रकारसे पारमार्थिक सत्यसे साक्षात्कार करा दिया जाये, तब फिर इनके समस्त लौकिक सद्गुण भी इनके परमार्थमें सहायक बन जायेंगे।

विश्वामित्र मुनि सोचते थे, "जिस सत्यका राजा हरिश्चन्द्र पालन करते हैं, वह केवल लौकिक सत्य है, तथा लौकिक सत्यका कु

बिना केवलमात्र लौकिक सत्यके पालनमें ही आविष्ट रहनेका कोई वास्तविक महत्त्व नहीं होता। श्रीभगवान्के भक्तोंके अतिरिक्त कोई भी वास्तविक सत्य नहीं बोल सकता। यदि मैं हरिश्चन्द्रसे प्रश्न करूँ, 'तुम्हारा नाम क्या है?' वह कहेगा, 'मेरा नाम हरिश्चन्द्र है।' 'तुम कौन हो?' 'मैं सम्राट हूँ।' 'यह कौन है?' 'यह मेरा पुत्र रोहिताश्व

है।' 'यह कौन है?' 'यह मेरी पत्नी शैब्या है।' यह समस्त परिचय लौकिक सत्य होनेपर भी पारमार्थिक दृष्टिकोणसे सत्य नहीं हैं। वास्तवमें सत्य केवल यही है कि हम यह नश्वर शरीर नहीं हैं, हम सब चिन्मय आत्मा हैं तथा इस संसारमें हमारे परस्परके सम्बन्ध मात्र शरीरसे सम्बन्धित तथा अनित्य हैं। वास्तवमें हमारा सम्बन्ध केवल परमात्मासे है तथा हम सब उन परमसत्य भगवान्‌के दास हैं।"

विश्वामित्रको पूर्ण विश्वास था कि राजाको यथार्थ सुख और नित्य-कल्याण केवल श्रीभगवान्‌की अनुभूति तथा पारमार्थिक ज्ञानसे ही प्राप्त हो सकता है तथा इसके अभावमें राजाका अकल्याण ही है।

उपरोक्त कारणसे एक रात्रि विश्वामित्र अपनी योगशक्तिसे राजाके स्वप्नमें प्रकट हुए। उन्होंने राजा हरिश्चन्द्रसे कहा, "तुम एक श्रेष्ठ राजा हो। तुम अत्यन्त उदार, सत्यवादी तथा ईश्वरके उपासक हो। तुम्हारे इतने सत्यनिष्ठ तथा धर्मात्मा होनेके कारण ही मुझे पूर्ण विश्वास है कि तुम मेरी इच्छाको पूर्ण करोगे। मुझे तुमसे कु

हरिश्चन्द्रने स्वप्नमें ही उत्तर दिया—"हे मुनिवर, आप जो कु

विश्वामित्रने अपनी इच्छा प्रकट करते हुए राजा हरिश्चन्द्रसे कहा—"राजन्! मुझे तुम्हारा सम्पूर्ण राज्य चाहिये।"

हरिश्चन्द्रने उत्तर दिया—"ठीक है, जैसी आपकी आज्ञा, मैं आपको अपना सम्पूर्ण राज्य देता हूँ।"

प्रातःकालमें उठने तक हरिश्चन्द्र स्वप्नमें जो कु
हुआ था, वह सब कु
पश्चात् विश्वामित्र साक्षात् रूपसे राजाके समक्ष उपस्थित हुए और उन्होंने पूछा, "राजन्! क्या तुम्हें गत रात्रिका स्वप्न स्मरण है?"

कु
स्मरण है।"

विश्वामित्र—"तुमने स्वप्नमें मुझे अपना सम्पूर्ण राज्य दे दिया था।"

हरिश्चन्द्र—"परन्तु वह तो मात्र एक स्वप्न था।"

विश्वामित्र—"नहीं, वह स्वप्न नहीं था। मैं वास्तवमें कल रात स्वप्नमें तुम्हारे पास आया था।"

राजा हरिश्चन्द्रको यह ज्ञात था कि महान् ऋषि-मुनि अपनी दिव्य शक्तिसे कहीं भी गमनागमन कर सकते हैं तथा ऐसे अनेक अद्भुत कार्य कर सकते हैं जो जनसाधारणको चमत्कृत कर दें। इसी कारण राजाने विश्वामित्रके शब्दोंपर विश्वास कर लिया।

विश्वामित्रने आगे कहा—"अतः अब तुम पूर्णतः जागृत अवस्थामें अपना सारा राज्य मुझे देनेका सङ्कल्प लो।"

हरिश्चन्द्रने कहा—"हाँ, मैं यह सङ्कल्प ले रहा हूँ कि मेरा यह राज्य अब आपका हुआ।"

वैदिक संस्कृतिके अनुसार यदि कोई कु
है तो उसे उस दानके साथ दानके दसवें भागके समान

दक्षिणा भी देनी होती है। अतः विश्वामित्रने हरिश्चन्द्रसे दक्षिणा देनेके लिए कहा।

विश्वामित्र बोले—"दक्षिणाके बिना दानका कोई भी सङ्कल्प पूर्ण नहीं होता। यद्यपि दक्षिणा दानके मूल्यके दसवें भागके समान होनी चाहिये, किन्तु तुम्हारे लिए उतनी दक्षिणा देना सम्भव नहीं होनेपर भी तुम्हें कु
अवश्य ही देनी होगी, भले ही वह तुम्हारे दानके मूल्यका सौंवा भाग ही क्यो न हो।"

हरिश्चन्द्रने पूछा—"मुनिवर, अन्ततः दक्षिणामें कितनी मुद्राएँ होनी चाहिये?"

विश्वामित्रने उत्तर दिया—"दस हजार स्वर्ण मुद्राएँ।"

हरिश्चन्द्रने तत्काल अपने कोषाधिकारीको आदेश दिया—"मुनिवरको दस हजार स्वर्ण मुद्राएँ दे दी जायें।"

विश्वामित्र कु
हरिश्चन्द्र हो या मिथ्यावादी! ऐसा प्रतीत होता है कि तुम अपने वचनसे पीछे हट रहे हो। तुम जानते हो ना कि तुम अपना सारा राज्य मुझे दे चुके हो। अतएव जब तुम्हारा राज्य ही मेरा है तो राजकोष भी अब मेरा ही हुआ, तब फिर तुम कोषाधिकारीको मुझे स्वर्ण मुद्राएँ देनेका आदेश कैसे दे सकते हो? तुम्हें दक्षिणाके लिए कोई अन्य उपाय सोचना होगा।"

हरिश्चन्द्र इस बातसे सहमत हो गये और बोले कि वे राज्यमें किसीसे ऋण ले लेंगे। परन्तु विश्वामित्रने

कहा—"प्रजा भी अब मेरी है। तुम उनमेंसे किसीसे भी ऋण नहीं ले सकते।"

राजाने विचार किया, "मेरे पास अब केवल मैं, मेरी पत्नी तथा मेरा पुत्र है, इनके अतिरिक्त सभी कु
चुका है।" तब उन्होंने मुनिसे कहा—"मैं स्वयंको, अपनी पत्नीको तथा पुत्रको बेचकर आपको मुद्राएँ दान करूँगा।"

विश्वामित्रने उत्तर दिया—"तुम मेरे राज्यकी सीमाके भीतर स्वयंको नहीं बेच सकते। इस राज्यके बाहर ही तुम ऐसा कर सकते हो।"

राजा हरिश्चन्द्रका राज्य सम्पूर्ण पृथ्वीपर ही था, अतः वे अत्यन्त उलझनमें पड़ गये कि अब वे क्या करें। तब विश्वामित्रने उन्हें परामर्श देते हुए कहा—"यद्यपि काशी मेरे राज्यके अन्तर्गत है, किन्तु वह इस संसारका अंश नहीं माना जाता। वह शिवजीका निवास स्थान है। यदि तुम वहाँ चले जाते हो, तब तुम मेरे राज्यकी सीमाके बाहर माने जाओगे। तुम वहाँ जाकर स्वयंको बेच सकते हो, परन्तु मुझे मुद्राएँ देना मत भूल जाना।"

हरिश्चन्द्र, उनकी पत्नी तथा उनके पुत्रको पैदल ही काशी जाना पड़ा, क्योंकि अब उनके रथ तथा घोड़े विश्वामित्रकी सम्पत्ति हो चुके थे। अनेक दिनों तक चलनेके बाद वे अन्ततः काशी पहुँचे। वहाँ हरिश्चन्द्र नगरके निवासियोंके बीच स्वयंको बेचनेके लिए बोली लगाने लगे। उस समय एक श्मशानके मालिक नीच डोम जातिके व्यक्ति वीरभद्रने हरिश्चन्द्रसे कहा कि यदि वे उनके

श्मशानकी जिम्मेदारीको ठीकसे निभाएँगे तो वह उन्हें खरीद लेगा। उस डोमके अलावा अन्य किसीने भी हरिश्चन्द्रको खरीदनेकी इच्छा प्रकट नहीं की। अतएव निरुपाय होकर हरिश्चन्द्रने उस व्यक्तिका प्रस्ताव स्वीकार कर लिया तथा इसके लिए उन्हें पाँच-हजार स्वर्ण मुद्राएँ प्राप्त हुई। बाकी पाँच-हजार मुद्राओंके लिए उन्होंने अनिच्छापूर्वक अन्य कोई उपाय न देख अपनी पत्नी तथा पुत्रको ब्राह्मण जातिके एक अत्यन्त निर्मम व्यक्तिके हाथों बेच दिया। इस प्रकार उन्होंने विश्वामित्रको दस हजार स्वर्ण मुद्राएँ दक्षिणामें दीं।

जिस प्रकार कोई अपनी गायको बेच देनेपर उसका मालिक नहीं रह जाता, उसी प्रकार हरिश्चन्द्र अब राजा नहीं थे, और न ही अपनी पत्नीके पति अथवा पुत्रके पिता थे। तथापि वे मन-ही-मन अपना कु

ही परिचय रखते थे। वे सोचते थे, "मैं राजा था। मैं शैब्याका पति तथा रोहिताश्वका पिता हूँ।"

कु

वर्षा-ऋतुकी अँधेरी रातमें एक सर्पने हरिश्चन्द्रके पुत्र रोहिताश्वको डस लिया जिससे उसकी मृत्यु हो गयी। तब शैब्याके मालिक कठोर-हृदयवाले ब्राह्मणने उससे कहा—"अपने बालकके दाह-संस्कारके लिए स्वयं ही व्यवस्था करो। मैं पहले ही तुम्हें खरीदनेके लिए धन व्यय कर चुका हूँ, अब तुम्हारे बालकके दाह-संस्कारके लिए और मुद्राएँ व्यय नहीं करूँगा। इस शवको यहाँ-से शीघ्र ले जाओ।"

अतः उस मूसलाधार वर्षाके साथ अत्यन्त ठण्डी हवावाली अन्धकारमयी रात्रिमें विलाप करती हुई शैब्याने अपने पुत्रके शवको गोदमें लिया तथा वह गङ्गाके तटपर स्थित उसी श्मशान घाटपर पहुँची, जहाँ उसके पति प्रहरी बनकर खड़े थे। उस अँधेरी रात्रिके समय हरिश्चन्द्र शैब्याको पहचान नहीं सके तथा उसके निर्धन और असहाय होनेपर भी उससे बोले—"श्मशानका शुल्क दिये बिना तुम यहाँ इस बालकका दाह संस्कार नहीं कर सकती।" शैब्याके पास शुल्क देनेके लिए आँचलमें लिपटे हुए अपने पुत्रके शवके अतिरिक्त और कु

उसी क्षण आकाशमें बिजली चमकी, जिसके प्रकाशमें हरिश्चन्द्रने देखा कि उनके समक्ष उनकी पत्नी शैब्या खड़ी है। उन्होंने कभी कल्पना तक भी नहीं की थी कि उन्हें अपने पुत्रको मृत अवस्थामें तथा अपनी पत्नीको ऐसी दुःखित तथा जर्जरित अवस्थामें वहाँ देखना पड़ेगा। उनका हृदय शोक-ग्रस्त हो गया तथा वे विलाप करते हुए कहने लगे—"हे भगवान्! यह क्या हो गया?"

अब तो हरिश्चन्द्र दुविधामें पड़ गये कि उनका क्या कर्त्तव्य है, परन्तु फिर भी उन्होंने ततक्षणात् श्मशानके प्रहरीके रूपमें अपनी नयी पहचानके प्रति सत्यप्रतिज्ञ होनेका प्रयास किया। जिसे वे कर्त्तव्य मान रहे थे, उसका अत्यन्त कठोरतासे पालन करते हुए उन्होंने शैब्यासे कहा—"मैं इस श्मशानका प्रहरी हूँ। तुम्हें मुझे शुल्क तो देना ही होगा।" शैब्याने उत्तर दिया—"मेरे आँचलके आधे भागके अतिरिक्त

श्मशानपर हरिश्चन्द्र एवं अपने मृत पुत्रको लेकर
खड़ी हुई उनकी पत्नी शैब्या

मेरे पास और कु
अपने आँचलके दो भाग करने लगी, उसी क्षण सृष्टिकर्त्ता और देवताओंमें मुख्यतम श्रीब्रह्मा तथा मृत्युके देवता यम आदि देवताओंके साथ विश्वामित्र मुनि वहाँ प्रकट हुए तथा उन्होंने कहा—"हरिश्चन्द्र! तुम्हारी परीक्षा समाप्त हुई।"

विश्वामित्रने अपना हाथ मृत बालकके शवपर रखकर कहा—"शीघ्र उठो वत्स!" तथा वह बालक उसी क्षण आकाशकी ओर देखता हुआ उठ खड़ा हुआ।

विश्वामित्र हरिश्चन्द्रसे बोले—"मैंने तुमसे जो सब कु ले लिया था, अब मैं वह सब तुम्हें लौटा रहा हूँ। यह राज्य पुनः तुम्हारा हुआ। हे राजन्! मैंने तुम्हारे साथ यह सब किसलिए किया, अब तुम उसे ध्यानसे सुनो। जिसे तुम सत्य और अपना धर्म मान रहे हो, वह लौकिक सत्य एवं शरीरका धर्ममात्र है, वह पारमार्थिक सत्य एवं आत्माका परमधर्म नहीं है। तुम हरिश्चन्द्र नहीं हो। यह तो तुम्हारे भौतिक शरीरका नाम है तथा यह भौतिक शरीर रक्त, माँस, हड्डी, मल तथा मूत्रके संयोगसे बना है। तुम सोचते हो कि, 'मैं पिता, पति, राजा आदि हूँ।' किन्तु यह किस प्रकार सत्य हो सकता है? वास्तवमें एकमात्र परमेश्वर श्रीकृष्ण ही समस्त प्राणियोंके पिता, पति, राजा आदि हैं। तुम अपने शरीरके भीतर स्थित आत्मा हो तथा उन्हीं परमेश्वर श्रीकृष्णके विभिन्न-अंश उनके नित्य दास हो। तुम्हारा यथार्थ परिचय इस संसारसे सम्बन्धित नहीं है। उपरोक्त घटनाके माध्यमसे मैंने तुम्हें यही अनुभव करानेका

प्रयास किया है कि तुम जिन समस्त वस्तुओंको सत्य मानते हो, वह अनित्य हैं तथा वास्तविक सत्य, नित्य वस्तु उनसे पृथक है। इसका साक्षात् अनुभव करनेके लिए तथा अपने नित्य मङ्गलकी आङ्काक्षासे तुम श्रीभगवान्के नामोंका कीर्त्तन तथा उनकी सेवा करनेका प्रयत्न करो।"

यद्यपि इससे पूर्व राजा हरिश्चन्द्र कर्त्तव्य रूपमें भगवान्की पूजा-अर्चना करते थे, परन्तु उनका हृदय भगवान्के प्रति समर्पित नहीं था और न ही वे उनके प्रति पूर्ण रूपसे शरणागत थे। वे इस जगत्के अवास्तविक सत्योंके प्रति समर्पित थे। अतएव अपने राजमहलमें रहकर समस्त सुख-सुविधाओंके बीच भी उन्हें इन सत्योंके द्वारा चित्तकी प्रसन्नता एवं सन्तोष प्राप्त नहीं हुआ था।

विश्वामित्र मुनिकी कृपासे उन्हें आत्मतत्त्व एवं परमधर्म—भगवान्की भक्तिका दिव्यज्ञान प्राप्त हुआ। विश्वामित्र आदिके प्रस्थान करनेपर कु
करनेके उपरान्त महाराज हरिश्चन्द्र अपने पुत्र रोहिताश्वको राज्यभार देकर हरिभजनके लिए वनमें चले गये। भगवान् श्रीरामचन्द्र बादमें इन्हींके वंशमें प्रकट हुए थे।

आत्मस्वरूपका ज्ञान ही 'प्रकाश' एवं आत्मस्वरूपका अज्ञान ही 'अन्धकार'

वेद हमें उपदेश देते हैं, "अन्धकारमें मत रहो, प्रकाशकी ओर बढ़ो।" यहाँ "प्रकाश" का तात्पर्य है दिव्यज्ञान अर्थात् हमारे वास्तविक नित्य स्वरूपका ज्ञान, उन परमेश्वरका ज्ञान

भगवान् श्रीकृष्ण अपनी श्रीराधा नामक ह्लादिनी (आनन्द-दायक) शक्तिके साथ। श्रीमती राधारानी अपने सर्वोच्च एवं निर्मल प्रेमके द्वारा भगवान् श्रीकृष्णको भी वशीभूत कर लेती हैं। श्रीमती राधारानीकी कृपाके बिना हममें भगवान्‌के प्रति प्रेम जाग्रत होना सम्भव नहीं है।

जिनके हम अतिक्षुद्र विभिन्नांश हैं, तथा उनके साथ हमारे प्रेममय नित्य सम्बन्धका ज्ञान। अर्थात् हम चिन्मय आत्मा हैं तथा परम-पुरुष श्रीकृष्णके विभिन्नांश एवं नित्य-दास हैं। जीवके (हमारे) द्वारा अपने स्वरूपमें अर्थात् अप्राकृत रूपमें स्थित होकर परम-पुरुष श्रीभगवान्‌की भक्ति अर्थात् सेवा करना ही "प्रकाश" है। श्रीभगवान्‌की शुद्ध-भक्ति अर्थात् सेवा ही हमें पूर्ण और शाश्वत आनन्द प्रदान करती है। इस विषयमें किञ्चत् भी सन्देह न करें, अपितु दृढ़ विश्वास रखें।

इस जगत्‌में किसीकी सेवा करनेसे जिसकी सेवा की जाय उसे सुख तथा सेवा करनेवाले सेवकको कष्ट होता है, किन्तु श्रीभगवान्‌की सेवाको इस जगत्‌के किसी व्यक्तिकी सेवाकी भाँति मानकर हमें भयभीत होनेकी आवश्यकता नहीं है। अप्राकृत प्रेमके राज्यमें सेवकको किसी भी प्रकारका कष्ट नहीं होता, अपितु श्रीभगवान्‌की सेवा करनेसे उसे ऐसा महान सुख प्राप्त होता है जो इस जगत्‌में अपनी पत्नी, पति, सन्तान, तथा माता-पिता आदिकी सेवासे प्राप्त होनेवाले सुखसे करोड़ों गुणा श्रेष्ठ होता है। भगवान् श्रीकृष्णके अप्राकृत जगत्‌में प्रेम एवं स्नेहका असीम सागर है। उस सेवा-सुखके सागरमें सर्वदा निमग्न रहना ही जीवका स्वरूप एवं नित्य स्वभाव है।

"अन्धकार" का तात्पर्य दिव्य ज्ञानके अभावसे है। अन्धकार अथवा अज्ञानमें स्थित होनेका अर्थ है, इस

शरीरसे सम्बन्धित वस्तुओंके प्रति आसक्त होना तथा इस संसारके विषयोंके प्रति ममताका भाव रखना।

सांसारिक वस्तुओंसे चिरस्थायी आत्मसुखकी प्राप्ति असम्भव

इस संसारमें सभी सुखी होना चाहते हैं, कोई भी दुःखी नहीं होना चाहता। हम देख सकते हैं कि अनादि कालसे सुख प्राप्तिके प्रयासमें रत होनेपर भी लोग वास्तवमें सुख प्राप्त करनेमें सफल नहीं हो पाये हैं। सुख-सुविधाओंके लिए रेलगाड़ी, वायुयान तथा अब कम्प्यूटर आदि अनेक प्रकारके आविष्कार किये गये है। सुख प्राप्तिके उद्देश्योंके लिए मनोरञ्जनके नए-नए साधन भी तैयार किये गये हैं। परन्तु क्या इन सभीसे किसीको चिरस्थायी अर्थात् आत्म-सुख प्राप्त हुआ है? विशेषकर लोगोंकी यह धारणा है कि धनके द्वारा सुख खरीदा जा सकता है, अतः धन सञ्चय करना होगा, परन्तु धनी होनेपर भी क्या कोई स्थायी रूपसे सुखी हो सका है?

आत्मसुखकी प्राप्तिका एकमात्र उपाय—भक्तियोग

भक्तियोग एक ऐसा दिव्य विज्ञान—एक ऐसी वैज्ञानिक प्रक्रिया है, जो हमें शाश्वत सुखकी ओर ले जाती है और हमारे जन्म-मृत्युके चक्रको समाप्त कर देती है। भक्तियोगके अनुशीलनके लिए धनी होनेकी आवश्यकता नहीं हैं और न ही हमें इसके लिए कठिन तपस्या-व्रत और शुष्क-वैराग्य इत्यादि बहुत अधिक श्रम करना पड़ता

है, कारण—भक्ति आत्माकी स्वाभाविक वृत्ति है। अतः इसके अभ्यासमात्रसे ही हमें शाश्वत सुखकी प्राप्ति होती है। लगभग पाँच-सौ वर्ष पूर्व स्वयं-भगवान् श्रीकृष्णने इस जगत्में श्रीचैतन्य महाप्रभुके रूपमें अवतरित होकर स्वयं ही अपने (भगवान्के) प्रति शुद्ध-भक्तिका आचरण करके जगत्-वासियोंको शिक्षा दी।

इस शुद्ध-भक्तियोगके पालनके द्वारा व्यक्ति स्वयंको श्रीभगवान्के विभिन्नांशके रूपमें—उनके नित्य सेवकके रूपमें अनुभव करता है तथा सभी जीवोंको भी उन्हीं श्रीभगवान्के विभिन्नांशके रूपमें दर्शन करके उनके प्रति प्रीति और स्नेहका अनुभव करता है। इस प्रकार वह स्वाभाविक रूपसे वास्तविक दिव्य सुख प्राप्त कर लेता है।

वैदिक शास्त्रोंमें शुद्धभक्तिकी परिभाषा इस प्रकार दी गयी है—"शुद्धभक्ति ऐसी क्रियाओंका अनुशीलन है जो एकमात्र श्रीकृष्णकी प्रीति एवं उन्हें आनन्द प्रदान करनेके लिए हों।" दूसरे शब्दोंमें, "कायिक, वाचिक तथा मानसिक—समस्त प्रकारकी चेष्टाओं तथा विविध अप्राकृत भावोंके द्वारा श्रीकृष्णके प्रति निरन्तरकी जानेवाली सेवाको शुद्धभक्ति अथवा उत्तमाभक्ति कहते हैं। वह शुद्धभक्ति जीव-ब्रह्म-अभेद विषयक ज्ञान तथा सकाम कर्मसे आवृत नहीं होती तथा श्रीकृष्णको आनन्द प्रदान करनेकी अभिलाषाके अतिरिक्त अन्य सभी अभिलाषाओंसे रहित होती है।" (श्रीभक्तिरसामृतसिन्धु १/१/११)

भगवान्‌से प्रेम करनेसे ही सभी प्राणियोंके प्रति प्रेम सम्भव

भक्तियोग अर्थात् परम-पुरुष श्रीभगवान्‌के प्रति प्रेमके बिना इस जगत्‌में सभी प्राणियोंके प्रति प्रेम तथा स्नेह करनेकी कल्पना असङ्गत है। यदि आप वास्तवमें सभी प्राणियोंसे प्रेम करना चाहते हैं तो पहले परमेश्वरसे प्रेम कीजिये। वह प्रेम स्वतः ही समस्त प्राणियोंमें वितरित हो जायेगा तथा इस प्रकार सभी सुखी हो सकते हैं। यही वास्तविक प्रेम तथा स्नेहकी विधि है। इस प्रेमके द्वारा शेर, भालु आदि वनके पशुओंको भी शान्त किया जा सकता है। इसी कारण प्राचीन कालमें सघन वनोंमें वास करनेवाले महान ऋषि-मुनियोंपर शेर तथा अन्य हिंसक पशु आक्रमण नहीं करते थे। यदि हम परमेश्वरके प्रति प्रेम जाग्रत कर लें तो हम वास्तवमें अन्य प्राणियोंसे प्रेम कर सकते हैं।

परमेश्वरका परिचय एवं स्वरूप

जो सम्पूर्ण ब्रह्माण्डोंकी सृष्टि कर सकते हैं, उन परमेश्वरमें समस्त प्रकारकी शक्तियों तथा ऐश्वर्योंका होना अनिवार्य है। इस जगत्‌में हम जिन सब रूपोंका दर्शन करते हैं, वे सभी उन्हींसे प्रकट हुए हैं। अतः परमेश्वर निराकार और निर्गुण नहीं, अपितु साकार और सर्वगुण सम्पन्न हैं। बाइबल कहती है कि ईश्वरने अपने रूपके अनुरूप ही मनुष्यकी सृष्टि की है और वेद भी इस बातकी पुष्टि करते हैं।

परमेश्वर भगवान् श्रीकृष्ण सुन्दर वृक्षों तथा उत्तमोत्तम फूलों-फलोंसे परिपूर्ण अप्राकृत वृन्दावन धामके आनन्दमय वनमें वेणु-वादन करते हुए।

परमेश्वर शाश्वत हैं तथा वेदोंमें उन्हें ब्रह्म, परमात्मा तथा भगवान् (परम-पुरुष, जिनमें समस्त ऐश्वर्य-माधुर्य तथा शक्तियाँ विद्यमान हैं) कहकर सम्बोधित किया गया है। परमेश्वरके स्वरूपकी इन तीन अभिव्यक्तियोंमेंसे केवल भगवान् ही पूर्ण अभिव्यक्ति हैं। निर्विशेष ब्रह्म उन्हीं भगवान्‌के शरीरकी अङ्ग-कान्ति हैं तथा परमात्मा सभी जीवोंके हृदयमें स्थित उन्हीं सविशेष ब्रह्म—भगवान्‌के आंशिक अवतार हैं। भगवान्‌की सत्तामें सभी कु
कि उनमें सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड समाहित हो जाते हैं। साथ ही वे इतने सूक्ष्म हैं कि वे वायु, अग्नि, जल तथा पृथ्वीके अणु-अणुमें भी विद्यमान हैं। वे सर्वत्र हैं तथा सब कु
देख और सुन सकते हैं।

परम-पुरुष श्रीभगवान् अद्वितीय तत्त्व हैं, अर्थात् न तो कोई उनके समान है और न ही कोई उनसे श्रेष्ठ है। वेदोंमें उन परमेश्वरको भगवान् श्रीकृष्णके नामसे जाना जाता है। श्रीकृष्णका अर्थ है—सम्पूर्ण आनन्द, सम्पूर्ण ज्ञान तथा शाश्वत नित्य सत्ताके सर्वाकर्षक स्रोत। उनके अनेक रूप हैं, जो उनसे अभिन्न हैं। ये वही परम-पुरुष हैं, जिन्हें हम सामान्यतः भगवान्, अल्लाह, जेहोवा आदि नामोंसे पुकारते हैं। वे ही हिन्दु, मुसलमान, ईसाई तथा अन्य सभीके ईश्वर हैं। ईश्वर अनेक नहीं एक ही हैं, वे ही भगवान् हैं, वे ही अल्लाह तथा ईसा हैं। जिस प्रकार समस्त विश्वके लिए एक सूर्य तथा एक ही चन्द्र हैं, उसी प्रकार सभी प्राणियोंके एक ही परमेश्वर हैं। परमेश्वर

एक ही हो सकते हैं, दो नहीं हैं, परन्तु वे एक ही परमेश्वर भिन्न-भिन्न दृष्टिकोणोंसे भिन्न-भिन्न प्रतीत होते हैं। अमावस्यासे पूर्णिमा—इन पन्द्रह दिनों तक चन्द्रका आकार क्रमशः बढ़ता हुआ प्रतीत होता है तथा पूर्णिमाके बाद अमावस्या तक उसका आकार पुनः घटने लगता है। इस कारण ऐसा प्रतीत होता है कि पन्द्रह भिन्न-भिन्न चन्द्र हैं। परन्तु ये चन्द्र एक दूसरेसे भिन्न नहीं हैं, केवल उनके नाम तथा अभिव्यक्तियाँ भिन्न हैं—जैसे पूर्णचन्द्र, अर्द्ध-चन्द्र, चतुर्थीका चन्द्र आदि। उसी प्रकार ईश्वर एक हैं, परन्तु अज्ञानवशतः ईश्वरके प्रति भिन्न-भिन्न धारणाएँ होनेके कारण तथा भिन्न-भिन्न भाषाएँ होनेके कारण लोगोंने एक ईश्वरको भिन्न-भिन्न मानकर परस्पर मतभेदकी सृष्टि कर ली है।

परमेश्वरके समस्त रूप तथा अवतार उन्हींकी ही अभिव्यक्तियाँ हैं तथा तत्त्वतः उनसे अभिन्न हैं। उनमेंसे

कु

कु

सदा पूर्ण रहनेपर भी हम पूर्णचन्द्र, अर्द्ध-चन्द्र आदि रूपमें उसकी वृद्धि तथा क्षय होते हुए देखते हैं। उसी प्रकार परमेश्वरकी परिपूर्ण अभिव्यक्ति भगवान् श्रीकृष्ण अद्वितीय हैं तथा उनके असंख्य प्रकाश हैं, जो उनसे अभिन्न हैं। भगवान् श्रीकृष्ण कभी-कभी इस संसारमें स्वयं प्रकट होते हैं तथा कभी शुद्ध-ज्ञानके प्रसारके लिए अपने नित्य-पार्षदोंको भेजते हैं। इस संसारमें सभी जीव श्रीकृष्णके नित्य-दास हैं। परन्तु जीव सृष्टिके आरम्भसे उन्हें भूल चुके हैं।

इसलिए इस जगत्के जीवोंको आकर्षित करके उन्हें अपनी सेवामें नियुक्त करनेके लिए भगवान् श्रीकृष्ण कभी-कभी स्वयं भी अवतरित होकर माधुर्यमयी लीलाएँ करते हैं।

जब हम सूर्यके अस्तित्वपर सन्देह नहीं करते हैं, तब फिर सूर्य अथवा ऐसे हजारों सूर्योंकी सृष्टि करनेवालेके अस्तित्वपर सन्देह क्यों करते हैं? हमें पूर्ण विश्वास होना चाहिये कि वे परम-पुरुष भगवान् क्षण-भरमें कोटि-कोटि ब्रह्माण्डोंकी रचना करके उन्हें ध्वंस भी कर सकते हैं। वर्त्तमानमें हम भगवान्के साथ अपने नित्य सम्बन्धको भूल चुके है। उस सम्बन्धको पुनः जाग्रतकर हमें अपनी प्रेममयी सेवामें नियुक्त करके दुःखोंसे हमारा उद्धार करनेके लिए ही वे इस जगत्में अवतरित होते हैं। इस लोकमें अथवा अन्य किसी भी लोकमें भगवान्की प्रेममयी सेवाके बिना सुखी होनेका अन्य कोई उपाय नहीं है। परमेश्वरके साथ हमारे नित्य-सम्बन्धके ज्ञानका अभाव ही हमारे दुःखोंका एकमात्र कारण है।

हरिकीर्त्तन—कलियुगमें आत्म-साक्षात्कारकी एकमात्र विधि

सत्त्वगुण प्रधान सत्ययुगमें मनुष्य हजारों वर्षों तक धार्मिक, पवित्र तथा शान्तिमय जीवन व्यतीत करते थे। उस समय महान तपस्वी, ऋषि-मुनि ध्यानके द्वारा परमेश्वरका दर्शन करते थे। यद्यपि वर्त्तमान कलियुगमें इस प्रकार एकाग्रचित्त होकर ध्यान करना सम्भव नहीं है, क्योंकि हमारा मन चञ्चल है, तथापि कलियुगमें भी ऐसा ध्यान

भगवान्‌के नामोंके कीर्त्तनके द्वारा सम्भव है। इस विधिसे हम श्रीभगवान्‌की कृपाको अनुभव कर सकते हैं तथा उनका दर्शन प्राप्त कर सकते हैं। अतः कलह तथा पाखण्डके इस युगमें श्रीभगवान्‌के पावनमय नामोंका कीर्त्तन ही ईश्वर-अनुभूति तथा आत्म-साक्षात्कारकी एकमात्र विधि है। वर्त्तमान युगमें परमेश्वरके प्रति विशुद्ध-प्रेम प्राप्त करनेके लिए वैदिक साहित्य हमें एकमात्र उनके नामोंका कीर्त्तन करनेका ही निर्देश देता है। इसकी विधि अत्यन्त सरल है—

हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे।
हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे॥

श्रीभगवान्‌के इन नामोंका कीर्त्तन कोई भी व्यक्ति या कोई भी भाषा बोलनेवाला कर सकता है, वह चाहे भारतीय, अँग्रेज, स्पेनिश अथवा चीनी इत्यादि कोई भी क्यों न हो। सभी धर्मोंके लोग एक ही परमेश्वरको पुकारते हैं जो अत्यन्त सुन्दर, आकर्षक, शक्तिशाली एवं कृपामय हैं। वे परमेश्वर सभीके साथ स्वामी, मित्र, पुत्र अथवा प्रेमी किसी भी रूपमें सम्बन्ध स्थापित करके लीला कर सकते हैं।

स्वयं श्रीभगवान्‌के द्वारा दी गयी प्रामाणिक विधिके अनुसार कीर्त्तन करनेपर ही हमारे द्वारा किया जानेवाला हरि-कीर्त्तन प्रभावशाली होगा अन्यथा हमें कीर्त्तनका वाञ्छित फल प्राप्त नहीं होगा। श्रीहरिकीर्त्तनकी इस

विधि तथा इसके द्वारा प्राप्त होनेवाले लक्ष्यका ज्ञान हमें शुद्ध-गुरुपरम्पराके माध्यमसे प्राप्त होता है, जिसका प्रारम्भ स्वयं श्रीभगवान्‌से ही होता है। जिन महापुरुषोंने साक्षात् श्रीभगवान्‌से इस दिव्यज्ञानको प्राप्त किया है, ऐसे महाभागवत सिद्ध-गुरुका चरणाश्रय प्राप्त करके ही व्यक्ति सफलतापूर्वक हरिनाम-कीर्त्तन कर सकता है।

आत्मतत्त्वविद् गुरु

यथार्थ गुरु वे हैं जो हमें कहते हैं कि, "मुझे एकमात्र तुम्हारे कान चाहिये। अतः मुझे केवल अपने कान दो।" समस्त इन्द्रियोंमें केवल कान ही ध्वनिकी तरङ्गोंको ग्रहण करनेमें सक्षम हैं, अतः वे अप्राकृत या दिव्य-शब्दको भी ग्रहण कर सकते हैं। शुद्ध गुरु-परम्परामें स्थित आत्मतत्त्वके ज्ञाता सद्‌गुरु हमारी श्रवण-क्रियाको अप्राकृत वाणीकी सेवामें नियुक्त करके हमें श्रीभगवान्‌के प्रति शरणागत होनेमें अर्थात् श्रवण-इन्द्रियके साथ-साथ हमारी अन्य इन्द्रियोंको भी सम्पूर्ण रूपसे भगवान्‌की सेवामें नियुक्त करनेमें हमारी सहायता करते हैं। सद्‌गुरुसे श्रवण करनेके माध्यमसे ही हमारी (जीवकी) पारमार्थिक यात्रा आरम्भ होती है। सद्‌गुरुके अप्राकृत-शब्द अर्थात् दिव्य-वाणी शिष्यके हृदयमें प्रवेश करके उसे उन भगवान् श्रीकृष्णकी अनुभूति करा देती है जो समस्त प्राणियोंके हृदयमें परमात्मारूपमें स्थित हैं। कानोंके अतिरिक्त अन्य कोई भी इन्द्रिय अप्राकृत-शब्द अर्थात् दिव्य-वाणीकी अनुभूति करनेमें सक्षम नहीं है।

आत्मतत्त्वविद् महापुरुषके द्वारा ही 'शब्द-ब्रह्म' का उच्चारण सम्भवपर

ध्वनियाँ भी दो प्रकारकी होती हैं। प्रथम अप्राकृत या दिव्य ध्वनि है जिसकी स्थिति भौतिक जगत्से परे होती है। उसे शब्द-ब्रह्म कहते हैं। यह शब्द-ब्रह्मरूपी दिव्य ध्वनि परम-पुरुष स्वयं-भगवान्की ही कृपासे गुरु-परम्पराके माध्यमसे प्राप्त होती है। दूसरी, साधारण भौतिक ध्वनिको शब्द साधारण कहते है, जो कि भौतिक जिह्वाके स्पन्दनसे उत्पन्न होती है। जिसने स्वयं भक्तियोगका भलीभाँति अभ्यास नहीं किया है तथा जो दोषरहित और सिद्ध नहीं है, वह अन्योंको श्रीकृष्णके पवित्र नाम तथा विविध प्रकारके मन्त्र भले ही प्रदान करे, परन्तु उसके द्वारा प्रदत्त नाम या मन्त्ररूप ध्वनियोंका कोई अप्राकृत या दिव्य प्रभाव नहीं होगा। यद्यपि भगवान्के नाम और मन्त्ररूपी ध्वनियाँ अपने स्वभावसे ही दिव्य तथा शक्तिशाली हैं, तथापि मन्त्र प्रदाता गुरुके लिए नाम एवं मन्त्रकी अनुभूतिसे युक्त होना आवश्यक है अन्यथा ये ध्वनियाँ नाम और मन्त्र ग्रहण करनेवालेके समक्ष साधारण, सांसारिक शब्दोंके रूपमें प्रकट होंगी।

केवल आत्मतत्त्वको जाननेवाले महात्मा ही उस अप्राकृत शब्दब्रह्मका पूर्ण रूपसे दोषरहित उच्चारण करते हैं, अतः हमें उन्हींसे नाम और मन्त्रको ग्रहण करना चाहिये। यदि गुरु अप्राकृत शब्दके कीर्त्तनमें सुदक्ष नहीं हैं तथा उन्हें उस शब्दब्रह्मकी कोई अनुभूति नहीं है, तब जो व्यक्ति

ऐसे गुरुसे शब्द ग्रहण करेगा, वह शब्द साधारण होनेके कारण उस व्यक्तिके हृदयमें अपना वास्तविक फल प्रदान नहीं कर सकता।

वैदिक शास्त्रोंमें अनेक स्थलोंपर ऐसे व्यक्तिके लक्षणोंका वर्णन है, जो अपनी शुद्धभक्तिके प्रभावसे वास्तवमें हमारी सहायता कर सकता है। यथा—

"वास्तविक कल्याणकी निष्कपट अभिलाषा रखनेवाले व्यक्तिको प्रामाणिक गुरुकी खोज करके उनसे दीक्षा ग्रहण करके उनका आश्रय ग्रहण करना चाहिये। एक प्रामाणिक गुरुका यह लक्षण है कि वे समस्त भौतिक अभिलाषाओंसे मुक्त हों, उन्होंने शास्त्रोंके निष्कर्षको विचारके द्वारा अनुभव कर लिया हो तथा वे दूसरोंमें परम-पुरुष श्रीभगवान्‌के प्रति श्रद्धा जागृत करनेमें सक्षम हों।" (श्रीभक्तिरसामृतसिन्धु १/२/९७)

आत्मतत्त्वविद् सद्‌गुरुके सङ्गकी महिमा

वैदिक शास्त्रोंमें अन्यतम रामायणमें वर्णित इतिहास यह प्रदर्शित करता है कि किस प्रकार रत्नाकर नामक (बादमें वाल्मीकिके नामसे प्रसिद्ध) एक क्रूर दस्यु आत्मतत्त्वको जाननेवाले सर्वलक्षण सम्पन्न सद्‌गुरु श्रीनारदके सङ्गसे महान भक्त हुआ। बाल्यकालसे ही रत्नाकरने सदैव दुष्टोंका सङ्ग किया, जिसके परिणामस्वरूप वे एक खूँखार दस्यु बन गये। यहाँ तक कि उन्होंने अनेक तपस्वियोंका वध भी किया। एक समय जब वे महान ऋषि नारदका वध करनेके लिए

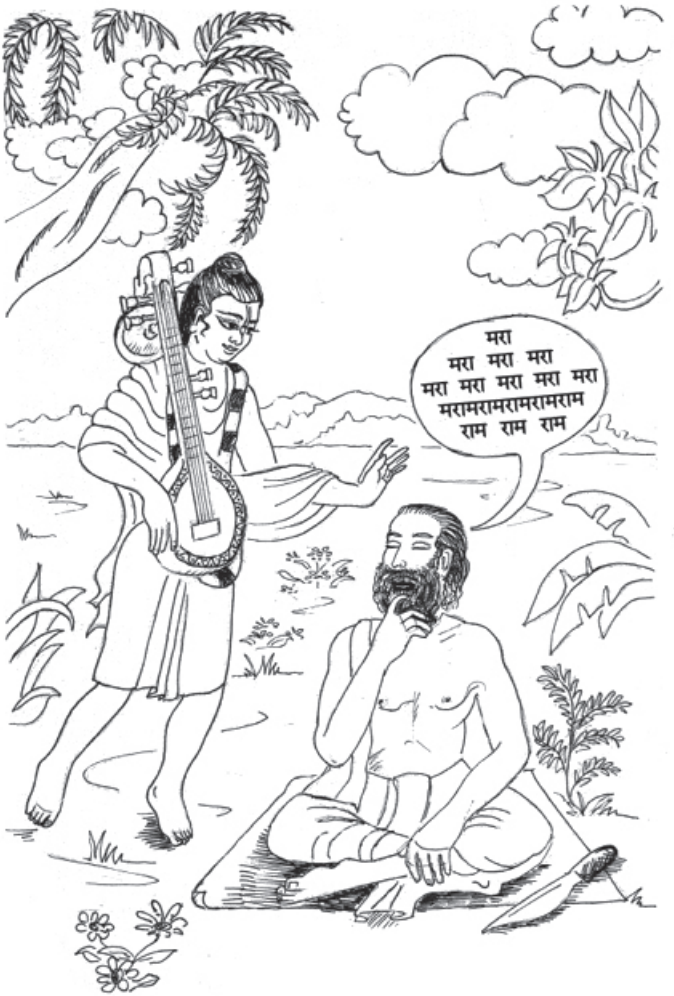

रत्नाकर दस्युपर कृपा करते हुए श्रीनारद ऋषि

जैसे ही उनकी ओर बढ़े, तभी नारद ऋषिने अपना हाथ उठाकर कहा, "ठहरो!" ऐसा सुनकर रत्नाकर अत्यन्त विस्मित एवं स्तम्भित हो गये और आगे नहीं बढ़ पाये। तब उनके हृदयमें नारद ऋषिके प्रति समर्पणका भाव जागृत हुआ। यह देखकर नारद ऋषिने अपनी योगशक्तिसे रत्नाकरको उनके निन्दित पापकर्मोंके फलोंका दर्शन कराया जो उन्हें भविष्यमें भोगने होंगे। उसी क्षण रत्नाकर नारद ऋषिके पूर्णतः शरणागत हो गये तथा उन्होंने नारद ऋषिसे उन समस्त फलोंसे मुक्त होनेके उपायके विषयमें पूछा।

इसके उतरमें नारद ऋषिने कहा—"तुम यहाँ बैठकर केवल 'राम राम' का जप करो, इसके अतिरिक्त और कु भी मत करना।" रत्नाकरने "राम राम" जपनेका प्रयास किया। परन्तु उनके पापकर्मोंके फल इस सीमा तक बढ़ चुके थे कि अन्य सब कु
उस दिव्य राम नामका उच्चारण नहीं कर सके। तब नारद ऋषिने कु
तुम 'राम राम' नहीं जप सकते तो 'मरा मरा' ही जपो।"

"मरा" (जिसका अर्थ "मृत" है) "राम" शब्दको उल्टा करनेसे बनता है। जब हम पुनः-पुनः "मरा मरा" जपते हैं तो उससे स्वतः ही "राम राम" का उच्चारण हो जाता है। रत्नाकरको यह निर्देश देकर नारद ऋषिने वहाँसे प्रस्थान किया।

रत्नाकर सहज रूपसे "मरा मरा" जपने लगे तथा अपने गुरुदेवके लौटनेकी प्रतीक्षा करने लगे। उन्हें इस प्रकारसे

जप करते-करते हजारों वर्ष बीत गये। इस बीच उन्होंने न तो भोजन किया और न ही मलमूत्रका त्याग किया। दीमक उनके माँस, रक्त आदि शरीरकी सप्त धातुओंको खा गये तथा उनके शरीरको एक वल्मीक (अर्थात् दीमकोंके रहनेके लिए मिट्टीके टीले जैसे स्थान) ने ढक दिया। इस प्रकार रत्नाकरकी केवल हड्डियाँ ही बची रहीं जो कि मिट्टीसे ढक चुकी थीं।

कालक्रमसे देवताओंमें प्रमुख तथा शाश्वत गुरु-परम्पराके प्रथम गुरु लोकपिता श्रीब्रह्माजी वहाँपर प्रकट हुए। रत्नाकरके शरीरकी ऐसी अवस्था देखकर उन्होंने मन्त्र उच्चारण करते हुए उसपर अपने कमण्डलुसे जल छिड़का, जिससे रत्नाकरका शरीर एक सुन्दर नवयुवकके समान हो गया और तभीसे वह वाल्माकि नामसे प्रसिद्ध हुए। ब्रह्माजीने उनसे कहा—"अब तुमने अपने मन्त्रको सिद्ध करके श्रीभगवान्‌की अनुभूति कर ली है। अब तुम्हें इस प्रकारकी तपस्याकी कोई आवश्यकता नहीं है। तुम अब भगवान् श्रीरामके नामोंकी महिमाका सर्वत्र प्रचार करो।" ऐसा कहकर ब्रह्माजीने प्रस्थान किया। इस प्रकार श्रीनारद ऋषि जैसे महान आत्मतत्त्वविद् गुरुकी कृपासे भगवान्‌के नामका उल्टा उच्चारण करते-करते भी रत्नाकर दस्युको सिद्धी प्राप्त हुई।

वाल्मीकिजीने अपनी समाधि अवस्थामें उन प्रभु श्रीरामकी ही लीलाओंका दर्शन किया जिनके नामोंका वे जप कर रहे थे। भगवान् श्रीरामकी उन लीलाओंका दर्शनकर

वाल्मीकिने प्रसिद्ध ग्रन्थ रामायणकी रचना की, जो कि भगवान् श्रीरामकी लीलाओंका प्रामाणिक इतिहास है।

कलियुगमें हमारे लिए वाल्मीकिजीकी भाँति कठोर तपस्या करना सम्भव नहीं है। परन्तु एक ऐसी विधि है जिसका हम सरलतासे पालन कर सकते हैं। यह विधि समस्त वैदिक शास्त्रोंका सार है। श्रीकृष्णके पूर्ण तथा दिव्य नामोंको प्रामाणिक गुरु अर्थात् सद्गुरुसे दीक्षाके माध्यमसे ग्रहण करें तथा सदा ही "हरे कृष्ण" महामन्त्रका कीर्त्तन करें। इससे आप सभी अनायास ही सुखी हो जायेंगे।

हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे।
हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे॥

श्रीश्रीमद्भक्तिवेदान्त नारायण गोस्वामी महाराजजीका संक्षिप्त परिचय

इस दुःखमय जगत्के जीवोंके प्रति परम करुणावशतः श्रील गुरुदेव—श्रीश्रीमद्भक्तिवेदान्त नारायण गोस्वामी महाराज वर्ष १९२१ ई॰ में मौनी अमावस्याकी शुभ तिथिपर भारतवर्षके बिहार राज्यके बक्सर जिलेमें स्थित तिवारीपुर ग्राममें एक शुद्ध-वैष्णव परिवारमें आविर्भूत हुए थे।

१९४६ ई॰ में श्रील भक्तिवेदान्त नारायण गोस्वामी महाराजको भगवान् श्रीकृष्णसे चलती आ रही गुरु-परम्पराके अन्तर्गत एक तत्त्वदर्शी गुरु—उनके श्रीगुरुपादपद्म श्रीश्रीमद्भक्तिप्रज्ञान केशव गोस्वामी महाराजका प्रथम दर्शन प्राप्त हुआ एवं उसी समयसे श्रीचैतन्य महाप्रभुके द्वारा आचरित और प्रचारित गौड़ीय-वैष्णव-धर्मके प्रति उनका सम्पूर्ण-समर्पित जीवन प्रारम्भ हुआ।

जगत्के बद्धजीवोंके नित्य कल्याणके लिए श्रील भक्तिवेदान्त नारायण गोस्वामी महाराजके श्रीगुरुदेवने उन्हें अपने साथ सम्पूर्ण भारतमें श्रीचैतन्य महाप्रभुकी वाणी-प्रचारके कार्यमें एवं विभिन्न गुरुत्वपूर्ण दायित्व प्रदानकर मठ-मिशनकी अनेक सेवाओंमें सक्रिय आत्मनियोग कराया। इन सेवाओंमें एक प्रमुख सेवा थी प्रतिवर्ष श्रीचैतन्य महाप्रभुकी आविर्भाव-तिथिके उपलक्ष्यमें श्रीनवद्वीपधाम परिक्रमा एवं कार्तिक-मासमें

व्रजमण्डल परिक्रमाके आयोजनका दायित्व, जिसका श्रील भक्तिवेदान्त नारायण गोस्वामी महाराजने अपने अन्तिम समय तक सुष्ठु रूपसे निर्वाह किया। उनके गुरुपादपद्म श्रीश्रीमद्भक्तिप्रज्ञान केशव गोस्वामी महाराजने १९५४ ई॰ में उन्हें मथुरा स्थित श्रीकेशवजी गौड़ीय मठके मठ-रक्षकके रूपमें नियुक्त किया एवं प्रमुख गौड़ीय-वैष्णवाचार्योंके ग्रन्थोंका

राष्ट्र

श्रील भक्तिवेदान्त नारायण गोस्वामी महाराजने अपने सम्पूर्ण जीवनकाल तक परम उत्साह और यत्नके साथ अपने श्रीगुरुपादपद्मका आदेश पालन करते हुए राष्ट्र

टीकाओं सहित बहुत-से ग्रन्थोंका अनुवाद तथा सम्पादन किया, जिसके फलस्वरूप हिन्दीमें प्रायः साठसे भी अधिक प्रमुख गौड़ीय-ग्रन्थ प्रकाशित हुए हैं।

इन ग्रन्थोंका अनुशीलन करनेसे यह सहज ही अनुभव होता है कि श्रील भक्तिवेदान्त नारायण गोस्वामी महाराज पारमार्थिक-ज्ञानके प्राचीन ग्रन्थ—वेदादि शास्त्रोंके सार-विषयोंके विद्वान एवं अनुभवी थे। उनके अनेक ग्रन्थ अँग्रेजी तथा अन्य भाषाओंमें अनुवादित हो चुके हैं तथा क्रमशः हो रहे हैं एवं हजारों व्यक्तियोंको एक नया जीवन तथा पारमार्थिक प्रेरणा प्रदान कर रहे हैं।

श्रीचैतन्य महाप्रभुकी वाणी एवं उसके अन्तर्गत गौड़ीय-दर्शनका प्रचार करनेके लिए श्रील भक्तिवेदान्त नारायण गोस्वामी महाराजने बहुत वर्षों तक सम्पूर्ण भारतका परिभ्रमण किया एवं १९९६ ई॰ से उन्होंने विदेशमें प्रचारसेवा आरम्भ

की। परवर्त्ती पन्द्रह वर्षोंमें उन्होंने सम्पूर्ण विश्वकी प्रायः चौंतीस बार परिक्रमा की है। क्या देश, क्या विदेश, उनका जीवन एवं प्रचारकार्य सदैव श्रीचैतन्य महाप्रभुके प्रधान परिकर श्रील रूप गोस्वामी एवं विश्वव्यापी गौड़ीय मठोंके प्रतिष्ठाता जगत्-गुरु श्रील भक्तिसिद्धान्त सरस्वती ठाकुर प्रभुपादकी विचारधाराको सम्पूर्ण रूपसे आत्मसात् करनेवाले अपने दीक्षा-गुरुदेव श्रीश्रीमद्भक्तिप्रज्ञान केशव गोस्वामी महाराज तथा शिक्षा-गुरुदेव श्रीश्रीमद्भक्तिवेदान्त स्वामी महाराजकी विचारधारा एवं वाणीका पालन एवं संरक्षण करनेमें व्यतीत हुआ। यदि कहीं भक्तिसिद्धान्तोंमें कु
अथवा कहींपर भक्तिशास्त्रोंकी व्याख्यामें कु
दिखलायी देता, तो श्रील भक्तिवेदान्त नारायण गोस्वामी महाराज निर्भीकतापूर्वक शास्त्रप्रमाण एवं युक्तिके द्वारा उन विचारोंका यथास्थान खण्डन तथा संशोधन करके यथार्थ सत्यको स्थापित करते थे। इस प्रकार वर्त्तमान समयमें उन्होंने गौड़ीय-सम्प्रदायकी विचारधारा, महिमा और गौरवका संरक्षणकर एक वास्तविक आचार्यका कार्य किया है।

श्रील भक्तिवेदान्त नारायण गोस्वामी महाराजने भारत एवं विश्वके अनेकानेक स्थानोंपर भ्रमण करके वहाँके लोगोंके समक्ष श्रीमद्भागवत, गीता आदि वैदिक शास्त्रोंसे आत्माके रहस्यमय तत्वोंका उद्घाटन करके जीवात्माकी स्वाभाविक एवं नित्यवृत्ति—भक्तियोग अर्थात् भगवान्से प्रेम करनेकी विधिकी शिक्षा प्रदान की है। सम्पूर्ण विश्वके विवेकवान, निरपेक्ष तथा धार्मिक व्यक्तियोंके द्वारा श्रील

भक्तिवेदान्त नारायण गोस्वामी महाराजको भगवान्‌के प्रति प्रेम–भाव तथा विश्ववासियोंमें सौहादके प्रचार और प्रसारके अवदानके कारण मान्यता प्राप्त है।

इस प्रकार सम्पूर्ण विश्वमें श्रीचैतन्य मन्महाप्रभुके आर्विभूत होनेके कारण तथा उनके द्वारा आचरित एवं प्रचारित प्रेमधर्मका प्रचार–प्रसार करते हुए श्रील भक्तिवेदान्त नारायण गोस्वामी महाराजने, २९ दिसम्बर, २०१० ई॰ को श्रीजगन्नाथपुरी धामके अन्तर्गत चक्रतीर्थ स्थित जयश्रीदामोदर गौड़ीय मठमें प्रायः नब्बे वर्षकी आयुमें अपनी भौमजगत्‌की लीला सम्वरण की। श्रीजगन्नाथ पुरीसे यात्रा करके श्रीचैतन्य महाप्रभुके विशेष प्रतिनिधि एवं उनकी अद्वितीय करुणाके मूर्त्तिमान विग्रह श्रील भक्तिवेदान्त नारायण गोस्वामी महाराजने श्रीनवद्वीपधाममें समाधि ग्रहण की। श्रील गुरुदेव—श्रीश्रीमद्भक्तिवेदान्त नारायण गोस्वामी महाराज अपनी अमृतमय–अप्राकृत–वाणीरूपी शिक्षाओंमें एवं अपने निष्कपट शरणागत भक्तोंके हृदयमें चिरकालके लिए ही विराजमान हैं।